निदेशक की कलम से

हालांकि आजकल भारत में आलू एक घरेलू नाम है, यह मुगल वंश के दौरान इस प्राचीन भूमि पर 400 वर्ष पूर्व आया था। 17वीं सदी के प्रारम्भ में यूरोप से इसकी शुरूआत के बाद, आजादी के समय तक यह एक नगण्य फसल बनी रही, मोटे तौर पर शुरू की यूरोपियन किस्मों की खराब उत्पादकता के कारण इसे कृषि-जलवायु को समशीतोष्ण करने के लिए अपनाया गया और गर्मियों में भारत के पहाड़ी इलाकों में खेती के लिए उपयुक्त पायी गई। भारत सरकार ने खाद्य सुरक्षा हेतु इस होनहार फसल का उपयोग करने के लिए सन् 1949 में भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय आलू अनुसंधान संस्थान की स्थापना की। संस्थान ने आलू की उपयुक्त किस्मों एवं तकनीकों का विकास किया है जो कि वास्तव में रबी फसल के रूप में शीतोष्ण आलू की फसल को उष्णकटिबन्धीय क्षेत्रों में इसके प्रसार को ठंड़े पहाड़ी क्षेत्रों से लेकर विशाल गंगा के मैदानों तक सक्रिय बना सके। अगले पांच दशकों के दौरान इसके क्षेत्रों, उत्पादन एवं उत्पादकता में बहुत तेजी से वृद्धि होने के कारण आलू उत्पादन में क्रान्ति आने वाली है।

हालांकि ग्लोबल वार्मिंग का प्रभाव 1900 के दशक के दौरान पड़ना शुरू हो गया था तथा आलू के अनुकूलन के लिए यह जरूरी हो गया है कि उपोष्णीय से लेकर उष्णकटिबंधीय फसल के लिए मैदानी भागों में निकट भविष्य में इसकी खेती को बनाये रखना आवश्यक हो जाएगा। वास्तव में, जलवायु परिवर्तन पर अंतर सरकारी पैनल (आई.पी.सी.सी.) ने अपनी चौथी आंकलन रिपोर्ट में भविष्यवाणी की कि वर्ष 2020 में आलू के मौसम में तापक्रम 0.78 से 1.18 डिग्री सेल्सीयस तथा वर्ष 2055 में 2.41 से 3.16 डिग्री सेल्सीयस तक गर्म होने की संभावना है। पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार एवं पश्चिमी बंगाल में आलू की पैदावार के लिए उपयुक्त अवधि 75-80 दिन से अधिक नहीं होगी। इसके अलावा, देश की खाद्य टोकरी को आर्थिक वृद्धि, जीवन शैली में परिवर्तन और आहार वरीयता के कारण एक कठोर परिवर्तन से गुजरना पड़ेगा। वर्ष 2020 और 2050 में अनाजों, सब्जियों और फलों की भविष्य में आवश्यकता को देखते हुए इनकी आत्मनिर्भरता को बनाए रखने के लिए अनाज के लिए 1.12 प्रतिशत, सब्जियों के लिए 2.41 प्रतिशत तथा फलों के लिए 3.71 प्रतिशत की विकास दर का संकेत मिलता है। भारत में क्रमशः वर्ष 2025 एवं 2050 के दौरान लगभग 56.16 एवं 124.88 लाख टन आलू उत्पादन की आवश्यकता होगी। वहीं दूसरी ओर, समस्त प्राकृतिक संसाधन मृदा, जल एवं ऊर्जा गंभीर कमी का सामना कर रहे हैं। कृषि उत्पादन के लिए आदानों का अभाव है तथा समय के साथ वह मंहगें हो जायेगें। इसलिए यह भी जरूरी हो गया है कि भविष्य में खाद्य उत्पादन तकनीकें कार्बन न्यूट्रल एवं टिकाऊ होनी चाहिए। इस पृष्ठभूमि के तहत्, आलू का सतत् उत्पादन बढ़ाने के लिए हमें अत्याधुनिक तकनीकों एवं उनकी पर्यावरणीय लागत के बीच एक संतुलन कायम करने की जरूरत है। सन् 1949 में इसकी स्थापना के समय से ही, भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय आलू अनुसंधान संस्थान ने उपोष्णीय कृषि जलवायु के तहत् आलू उत्पादन के लिए किस्मों एवं तकनीकों का विकास करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वैज्ञानिक, छात्र एवं संस्थान के अन्य कर्मचारी अपनी मूल सोच, नवाचार, कड़ी मेहनत एवं राष्ट्रीय प्रतिबद्धता के कारण देश में सबसे अच्छा कार्य कर रहे हैं। उन्होनें अपनी क्षमता से किसी भी कठिन

चुनौती का सामना करना सिद्ध किया है और मुझे यकीन है कि विशाल मध्य सिंधु-गंगा (आई.जी.पी.) के मैदानों में आलू की खेती को बनाए रखने पर ग्लोबल वार्मिंग के आसन्न खतरे पर भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद से तकनीकी समर्थन के साथ हमारे कठोर परिश्रमी किसान मित्रों के द्वारा वर्ग रूप में पूरा किया जाएगा जिसमें भा.कृ.अनु.प.-क्रेन्दीय आलू अनुसंधान संस्थान एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायेगा। संस्थान ने उपयुक्त किस्मों के विकास, उत्पादन, संरक्षण एवं फसलोत्तर तकनीकों के विकास हेतु विशेष रूप से विशाल मध्य सिंधु-गंगा (आई.जी.पी.) के मैदानों के लिए जो कि जलवायु परिवर्तन के कारण आलू की खेती को खोने की दहलीज पर खड़े हैं, के लिए आर4डी कार्य योजना को लक्षित किया है।

उपोष्णीय परिस्थिति में आलू का अनुकूलनः जड़ एवं कंद फसलों के बीच आलू शायद एकमात्र ऐसी फसल है जिसकी उत्पादकता पर जलवायु परिवर्तन का नकारात्मक असर होने की संभावना है। दक्षिणी एवं प्रायद्विपीय भारत में (9-47 प्रतिशत) तक की उपज में गंभीर कमीं तथा मध्य-सिंधु गंगा के मैदानों में (3-13 प्रतिशत) तक मध्यम कमी के लिए इन्फोक्रोप-आलू मॉडल का सुझाव दिया। आलू उत्पादन में क्रमशः वर्ष 2020 एवं 2050 में 2.61 तथा 15.32 प्रतिशत तक की गिरावट हो सकती है। इस स्थिति से बचने एवं अनुमानित मांग को पूरा करने के लिए, उपोष्णीय स्थिति के अर्न्तगत आलू की खेती करने के लिए किस्मों एवं उत्पादन तकनीकों के विकास के लिए तत्काल कार्य योजना को आरंभ करना आवश्यक हो गया है। 1. कम अवधि वाली किस्मों 2. अगेती बल्किंग एवं परिपक्वता वाली किस्मों, 3. किस्में जिनका ≥25 oC पर कंदीकरण किया जा सके, 4.ऊष्मा सहनशीलता का प्रबंधन, 4. आक्रामक एवं सीमा-विस्तार कीटों एवं रोगों का प्रबंधन तथा 5. प्रशीतन श्रृंखला प्रबंधन आदि के विकास पर जोर दिया जाएगा।

उत्पादकता में वृद्धिः स्थायी तौर पर उत्पादन लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आलू की उपज में ठहराव एक रूकावट है। इस बाधा को तोड़ने के लिए लीक से हटकर सोच एवं नवाचार प्रौद्योगिकियों की तत्काल आवश्यकता है। विभिन्न फसलों के पौधों की अधिकतम उपज क्षमता के दोहन के लिए निम्नलिखित दृष्टिकोणों को स्वीकार किया जाएगा - (1) किस्मों के आनुवंशिक आधार का विस्तार, (2) प्रत्यक्ष उपज वृद्धि के लिए जीन का शोषण (3) संश्लेषक ऊर्जा रूपान्तरण दक्षता में सुधार, तथा (4) कंद की बढ़ोत्तरी में सुधार।

टिकाऊ उत्पादन प्रणाली भारत में कृषि, सबसे बड़ा निजी उद्यम है, 1380 लाख खेतिहर कृषकों में से 85 प्रतिशत के पास 2 हैक्टेअर से कम कृषि भूमि है। इनमें से अधिकांश परिवार कई कृषि गतिविधियों जैसे कृषि/बागवानी, मुर्गी एवं पशुपालन, मछली पालन, मधु मक्खी पालन तथा कृषि वानिकी के कार्य में व्यस्त हैं। इसलिए, विशेष रूप से फसल के लिए अलगाव में विकसित तकनीकों को जब इस प्रकार की बहु प्रयोजन को (खेतिहर किसानों) के लिए लागू किया जाता है तो सरसरी तौर पर उन्हें नजरअंदाज किया जा सकता है। हमारी समस्त भविष्य की प्रौद्योगिकियों का किसी भी संस्थान की विशेष जनादेश

फसल के बजाय उसकी समग्र कृषि प्रणाली को संबोधित करने का उद्देश्य होना चाहिए। इस लक्ष्य को हासिल करना तभी संभव होगा जब हम केवल पारिस्थितिकी के सिद्धान्तों पर आधारित पर्यावरण हितैषी तकनीकों, आर्थिक, इक्विटी एवं रोजगार सृजन का विकास एवं प्रसार करेगें। मृदा स्वास्थ्य एवं संपोषणीय भूमि का उपयोग सुनिश्चित करने के लिए, निम्नलिखित पहलुओं- (1) तकनीक के विकास के लिए एकीकृत कृषि प्रणाली दृष्टिकोण, (2) जल उपयोग दक्षता (प्रति बूंद अधिक फसल), (3) पोषक तत्वों की गहन प्रौद्योगिकियों के बजाय पोषक तत्वों की अनुक्रियाशीलता पर जोर, (4) संरक्षित कृषि तथा (5) जैव-गहन फसल प्रबंधन आदि पर जोर दिया जाना चाहिए।

पिछेता झुलसा का प्रबंधनः यद्यपि आलू कई पत्ती रोगों से प्रभावित होता है। जिसमें पिछेता झुलसा एक कवक की तरह के जीव फाईटोफ्थोरा इनफैस्टान्स के कारण सबसे महत्वपूर्ण है। इस रोग के कारक जीव यूरोप से आयातित बीज आलू के साथ भारत में आये। इसे सन् 1870 एवं 1880 के बीच नीलगिरी की पहाड़ियों में पहली बार देखा गया तथा यह उत्तर-भारत की पहाड़ियों पर बहुत तेजी से फैली। पहाड़ियों से यह रोग धीरे-धीरे मध्य सिंधु गंगा के मैदानों में फैल गया। वर्तमान में, यह रोग प्रति वर्ष पहाड़ियों में प्रकट होता है और दो से तीन साल में एक बार मैदानों में बहुत ही विनाशकारी रूप में प्रकट होता है। इसके रोगजनक अत्यधिक परिवर्तनशील है और नई नस्ल वाली किस्मों एवं कवकनाशकों में जल्दी से अनुकूलित हो जाते हैं। इसलिए हमेशा ही इस खतरनाक बीमारी की समस्या को रोकने के लिए सतर्क रहना आवश्यक है। जांच के तहत् क्षैतिज प्रतिरोध एवं अभिनव आणविक प्रजनन दृष्टिकोण के लिए मार्कर सहायता प्राप्त प्रजनन का इस्तेमाल उच्च अनुकूली रोगजनक के रखरखाव के लिए किया जाएगा।

फसलोत्तर प्रबंधनः ऐसा अनुमान है कि खुदाई के बाद 2.8 से 10 प्रतिशत तक बिल्कुल भी खराब ना होने पर, 6.8 से 12.5 प्रतिशत अर्द्ध खराब होने पर तथा 5.8 से 18 प्रतिशत तक जल्दी खराब होनें पर कृषि उत्पादों का नुकसान होता है। आलू जैसी खराब होने वाली फसल जिसकी गर्मी के मौसम की शुरूआत में खुदाई की जाती है, यह नुकसान बहुत अधिक मात्रा में 20 प्रतिशत तक हो सकता है। उपयुक्त फसलोत्तर उपायों का इस्तेमाल करके इन हानियों को लगभग 50 प्रतिशत तक रोका जा सकता है। खेत पर प्राथमिक प्रसंस्करण सुविधाओं की स्थापना करके छोटे किसानों को बड़े पैमाने पर समर्थ किया जाएगा। पारिवारिक किसानों को वरीयता के आधार पर खेत में या नजदीकी उत्पादन केन्द्र पर फसलोत्तर प्रसंस्करण एवं कृषि उत्पादों की पैकेजिंग शुरू करने के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है। इस प्रकार की तकनीकों के द्वारा कृषि के क्षेत्र में आगे संबंधों को मजबूत करने के साथ ग्रामीण क्षेत्रों में उद्यमशीलता को बढ़ावा को मिलेगा। खेत परिवार के सदस्यों के लिए अतिरिक्त कार्य दिवस बढ़ाकर, खुदाई एवं अतिरिक्त आय के लिए बेहतर कार्य करके ऐसा संभव हो सकेगा। फसलोत्तर उपरान्त होने वाले नुकसान को कम करने के लिए निम्नलिखित क्षेत्रों : (1) प्रसंस्करण किस्मों एवं तकनीकों का विकास, (2) खेत पर भंडारण करके एवं प्राथमिक प्रसंस्करण इकाईयां (3) ऊर्जा से भरपूर

भंडारण संरचना, (4) कम ताप पर चिप्स बनाने के लिए तकनीकें, (5) आलू की चोटों के प्रबंधन आदि पर जोर दिया जाएगा।

गुणवत्तायुक्त बीज उत्पादनः भारत में दो लाख हेक्टेयर क्षेत्र में बुआई के लिए कम से कम छः लाख मीट्रिक टन उत्तम गुणवत्ता वाले आलू बीज की आवश्यकता है। भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय आलू अनुसंधान संस्थान विभिन्न राज्यों एवं अन्य संगठनों को लगभग 2500 मीट्रिक टन ब्रीडर बीज की आपूर्ति करता है जिसे आधार बीज एवं प्रमाणित बीज के दो चक्रो के बाद 1.6 मिलियन टन में गुणन किया जा सकता है, जिससे कुल आवश्यकता का लगभग 26 प्रतिशत बढ़ाये जाने की बात कही गई है। इसलिए, गुणवत्तायुक्त बीज उत्पादन के अंतर को कम करने के लिए निजी एवं सार्वजनिक भागीदारी दोनों को प्रोत्साहित किया जाना आवश्यक है। गुणवत्तायुक्त आलू बीज उत्पादन का विस्तार करने के लिए निम्नलिखित क्षेत्रों पर जोर दिया जायेगाः (1) कम लागत एवं कारगर बड़े पैमानें पर प्रचार के तरीकों- ऐयरोपोनिक्स, बायो रियेक्टर प्रौद्योगिकी का विकास एवं मानकीकरण, (2) बीज उत्पादन के लिए कृषि विज्ञान केन्द्र/राज्य कृषि विश्वविद्यालय, (3) प्रामणित बीज उत्पादन के लिए बीज ग्राम/प्रगतिशील किसानों की पहचान पर जोर।

सामरिक अनुसंधान क्षेत्रः हालांकि पिछले दो दशकों में पौध चयापचय इन्जीनियरिंग में उल्लेखनीय प्रगति हुई है, पादप विज्ञान में लंबे समय से खड़ी चार चुनौतियां को अभी तक एक व्यापक ढंग से समझना है। इन बुनियादी अनुसंधान के क्षेत्रों में नई एवं रोचक जानकारियों को विश्वस्तरीय स्तर पर उत्पन्न किया जा रहा है। इसके अलावा, जड़ जीव विज्ञान/वास्तुकला विशेष रूप से जड़ एवं कंद फसलों को लक्षित कर निम्नलिखित जमीनीं तकनीकों से द्वितीय हरित क्रान्ति के आने की भविष्यवाणी की है (1) वायुमंडलीय नाईट्रोजन स्थिरीकरण की क्षमता प्रदान करने से, (2) संश्लेषक कार्बन निर्धारण दक्षता में सुधार कर, (3) इनपुट उपयोग दक्षता एवं कंद की बढ़ोत्तरी के लिए जड़ जीव विज्ञान/आर्कीटैक्चर (4) फसल किस्मों का बायोफोर्टीफिकेशन (5) जैव उत्पादन प्रपत्र बायोमास में सुधार।